जैन पुराण-कथा का लाक्षणिक स्वरूप

श्री वीरेन्द्रकुमार जैन

सबसे पहले पुराण-कथा के प्रकृत स्वरूप और उसके मनोवैज्ञानिक उद्गम पर प्रकाश डाल देना ज़रूरी है।

मनुष्य अपने वास्तविक रूप से तुष्ट नहीं। उसे अनादि काल से उच्चतर और सम्पूर्णतर जीवन की खोज रही है। इस खोज ने इन्द्रियगम्य वस्तु-जगत् की सीमा भी लांघी है, और मनुष्य ने लोकोत्तर और दिव्य के सपने भी देखे हैं। सपने ही नहीं देखे, अपने उन सपनों को अपने रक्तांशों में जीवित कर, अपने ही मांस में से उसने प्रकाश की उन मूर्तियों को जीवन्त भी किया है। जब-जब मनुष्य के स्वप्न के उस 'परम सुन्दर' ने रूप ग्रहण किया, वह अपने सर्वांगीण ऐश्वर्य की अनेक लीलाओं को मानवीय मन पर बहुत गहरा अंकित कर गया। उस परम पुरुष या परम नारी का जो स्थूल व्यक्तीकरण होता है, वह अपने आप में ही समाप्त नहीं है। उस लीला में एक अधिक गहरा और सूक्ष्म सत्य होता है, जो अरूप होता है। चर्मचक्षु की पकड़ में वह नहीं आता, पर बोध के द्वारा वह उस काल के मनुष्यों की अनुभूति में रम जाता है। यह अनुभूति मानवी रक्त में समाविष्ट होकर पीढ़ी दर पीढ़ी संक्रमित होती रहती है। विकास के नव-नवीन उन्मेषों और सपनों से मनुष्य उस अनुभूति को सघनतर और विपुलतर बनाता जाता है, नाना काव्यों और कला-कृतियों में उसे संजोता है और अन्ततः वही अनुभूति श्रेष्ठतर और उच्चतर मानवों के रूप में आविर्भूत होकर हमें आगामी देवत्व का आभास दे जाती है। हमारे वैज्ञानिक युग के 'सुपर मैन' की कल्पना के मूल में भी उत्तरोत्तर विकास की यही अजस्र चेतना काम कर रही है।

मनुष्य के भीतर अपार ऐश्वर्य की सम्भावनाएं दिन और रात हिलोरें ले रही हैं। उन्हें वह एक वास्तविक और सीमित घटना के वर्णन के रूप में नहीं आंक सकता, क्योंकि वह देश-काल की बाधा से मुक्त असीम भूमा का परिणमन है। इसीसे उस अनन्त सौन्दर्य को व्यक्त होने के लिये कल्पना का सहारा लेना पड़ता है। सर्वकाल और सर्वदेश में उसी एक प्राण-पुरुष की सत्ता व्याप्त है। इसीसे मनुष्य का मन सब जगह समान रूप से काम करता है और यही कारण है कि जहां भी और जब भी किसी लोकोत्तर, दिव्यसत्ता ने जन्म लिया है, तो उसने सर्वत्र मानवी मन पर अपनी असाधारणता की प्रायः एक-सी छाप डाली है। इस तरह मनुष्य के स्वप्न के विगत, आगत और अनागत आदर्श पुरुषों की कथाओं को एक लाक्षणिक रूप-सा मिल गया है।

कल्प-पुरुष के इसी लाक्षणिक रूप को भिन्न-भिन्न देश-काल के लोगों ने और उनके कवि-मनीषियों ने नाना रंगों के प्रकाश-सूत्रों में बांधा है। स्वप्न-पुरुष और स्वप्न-नारी की इस कल्पना-ग्राह्य कथा को ही हम पुराण-कथा कह सकते हैं। निरे वास्तव के तथ्य से ऊपर उठ कर कथा जब भी भाव-कल्पना के दिव्य लोक में चली गयी है, तभी वह पुराण-कथा बन गयी है। अपने मन की सारी उद्दीप्त आशा, कांक्षा और कामना से अभिषिक्त कर मनुष्य की अनेक पीढ़ियां उसी कल्प-पुरुष की कथा के नव-नवीन और महत्तर रूपों को दुहराती गयी हैं। मनुष्य की कथा जब भी प्रकट सामान्य के धरातल से उठकर सम्भाव्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असामान्य के स्वप्न-जगत् में चली गयी है, तभी वह पुराण-कथा हो गयी है। इसीसे प्रायः ये कथाएं रूपक, प्रतीक और दृष्टान्त के रूप में ही पाई जाती हैं। वे मात्र वास्तविक घटना की कथा नहीं कहतीं, वे तो बिना कहे ही जीवन के कई निगूढ़ सत्यों पर अनेक रंगों का प्रकाश डाल देती हैं।

जैन पुराणों में भी इस कल्प-पुरुष यानी मनुष्य के परम काम्य आदर्श की कथा को ही लाक्षणिक रूप प्राप्त हुआ है। जैनों के यहाँ इन परम पुरुषों को शलाका पुरुष कहा गया है। उनके स्वरूप, सामर्थ्य, लीला और चरम प्राप्ति की भिन्न-भिन्न कोटियों के अनुसार उनकी अलग-अलग लाक्षणिक मर्यादाएं कायम कर दी गयी हैं।

जैन कवि-मनीषियों ने अपने आदर्श की चूड़ा पर तीर्थंकर की प्रतिष्ठा की है। तीर्थंकर वह व्यक्तिमत्ता होती है, जिसमें सारे लौकिक और अलौकिक ऐश्वर्य एक साथ प्रकाशित होते हैं। दैहिक दृष्टि से वह असामान्य बल वीर्य, शौर्य, विक्रम-प्रताप और सौन्दर्य का स्वामी माना जाता है। उसकी अंग-रचना का बड़ा ही विशद और सार्थक वर्णन शास्त्रों में मिलता है। आदि से अन्त तक बाल-रूप का सलौना और निर्दोष मार्दव उसके मुख पर और काया में विराजता रहता है। आयुष्य के प्रभाव से वह अविक्षत रहता है, और स्वयं काल भी उसकी देह का घात नहीं कर सकता। इसीसे उसे चरम शरीरी कहा गया है। वह लोक का अपराजित आदित्य-पुरुष यानी पूषन् होता है, जिसमें सारे तत्त्वों का सारभूत तेज, रस और शक्ति समाई रहती है। किसी पूर्वजन्म में निखिल चराचर के कल्याण की कामना करने से वह तीर्थंकर प्रकृति बांधता है। इसीसे जब वह तीर्थंकर होकर पैदा होता है तो लोक में सर्वांगीण अभ्युदय प्रकट होता है। प्राणिमात्र के प्राण एक अव्याहत सुख से व्याप्त हो जाते हैं। तत्कालीन धरती पर वही लोक और परलोक की सारी सिद्धियों का प्रकाशक, विधाता और नेता होता है।

आदि से अन्त तक तीर्थंकर की जीवन-लीला बड़ी काव्यमय और रोचक है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानव कवि की कल्पना का सारभूत मधु और तेजस् उस रूपक में साकार हुआ है। वह मानवों और देवों की महत्त्वाकांक्षा का चरम रूप है। तीर्थंकर के गर्भ में आने के छह महीने पहले से पंच आश्चर्यों की वृष्टि होने लगती है। आस-पास के प्रदेशों में निरन्तर रत्न-वर्षा होती है, नन्दन के कल्प-वृक्षों से फूल बरसते हैं, गंधोदक की वृष्टि होती है, और आकाश में दुंदुभियों के घोष के साथ देव जय-जयकार करते हैं। पृथ्वी अपने भीतर के समूचे रस से संसार को नव-नवीन सर्जनों से भर देती है। तीर्थंकर जिस रात गर्भ में आते हैं, उस रात उनकी माता ऐरावत हाथी, वृषभ, सिंह आदि के सोलह[1] सपने देखती है, जो उस आगामी परम-पुरुष की अनेक विभूतियों के प्रतीक होते हैं। तीर्थंकर के जन्म के समय इन्द्र का आसन कम्पायमान होता है, देवलोक और मर्त्यलोक में अनेक आश्चर्य घटित होते हैं। सभी स्वर्गों के इन्द्र अपनी देवसभाओं सहित अन्तरिक्ष को दिव्य संगीत से गुंजित करते हुए, लोक में प्रभु के जन्म का उत्सव मनाने आते हैं। बड़े समारोह से शिशु भगवान् को मेरु पर्वत पर ले जाकर उन्हें पांडुक शिला पर विराजमान किया जाता है, फिर देवांगनाओं द्वारा लाये हुए क्षीर-सागर के जल के एक हजार आठ कलशों से उनका अभिषेक किया जाता है। कई दिनों तक इंद्राणियां और देवियां प्रभु की माता की सेवा में नियुक्त रहती हैं। इसके उपरान्त भिन्न-भिन्न तीर्थंकरों के प्रकरणों में उनके कुमार-काल और राज्यकाल की विशिष्ट कथाएं वर्णित होती हैं।

---

१. कुछ लोगों की मान्यता के अनुसार चौदह। —संपादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीर्घ समय तक विपुल सुख-भोग के साथ राज्य करते-करते किसी एक दिन अचानक सांसारिक क्षण-भंगुरता पर उसकी दृष्टि अटक जाती है। सारा ऐहिक सुख-भोग उसकी दृष्टि में विनाशी और हेय जान पड़ता है। देह, महल और संसार के बन्धन उसे असह्य हो उठते हैं। सब कुछ त्याग कर वह चल पड़ने को उद्यत हो जाता है, तभी लोकान्तिक देव आकर उसकी इस मांगलिक चित्त-वेदना का अभिनन्दन कर, उसके वैराग्य का संकीर्तन करते हैं। जब वह नरसिंह महाभिनिष्क्रमण के लिए उद्यत होता है, उस समय संसार की सारी विभूतियां हाहाकार कर उठती हैं कि हाय, उनका एकमेव समर्थ भोक्ता भी उन्हें त्याग कर चला जा रहा है, और उसे बांध कर पकड़ रखने की शक्ति उनमें नहीं है।

इन्द्र आकर बड़े समारोह से प्रभु का दीक्षा-कल्याणक करता है। वह मानव-पुत्र निर्वसन[1] दिगम्बर होकर प्रकृति की विजय-यात्रा पर निकल पड़ता है। महाविकट कान्तारों और पर्वत-प्रदेशों में वह दीर्घकाल तक मौन समाधि में लीन हो रहता है। अनायास एक दिन कैवल्य के प्रकाश से उसकी आत्मा आरपार निर्मल हो उठती है। तीनों काल और तीनों लोक के सारे परिणमन उसके चेतन में हाथ की रेखाओं से झलक उठते हैं। तब निर्जन की कन्दरा को त्याग कर लोक-पुरुष अपना पाया हुआ प्रकाश निखिल चराचर के प्राणों तक पहुंचाने के लिये लोक में लौट आता है। इन्द्र और देवगण उसके आसपास विशाल समव-शरण की रचना करते हैं। तीर्थंकर की यह धर्मसभा देश-देशान्तरों में विहार करती है। आगे-आगे धर्मचक्र चलता है, दिशाएं नव युगोदय और नवीन परिणमन के प्रकाश से भर जाती हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुरूप लोक में अनेक कल्याणकारी परिवर्तन होते हैं। प्रभु की अजस्र वाणी से प्राणिमात्र के परम कल्याण का उपदेश निरन्तर बहता रहता है। लोक में उस समय अपूर्व मंगल और आनन्द व्याप्त हो जाता है। जीवों के वैर-मात्सर्य, दुःख-विषाद मानो एकबारगी ही लुप्त हो जाते हैं। इस तरह अनेक वर्ष दूर-दूर देशों में विहार करके धर्म का चक्र-वर्तन करते हुए अनायास एक दिन किसी ज्योतिर्मय क्षण में प्रभु का परिनिर्वाण हो जाता है। ऐसी भव्य और दिव्य है तीर्थंकर की जीवन-कथा।

लोक का दूसरा प्रतापी शलाका पुरुष होता है चक्रवर्ती। चक्रवर्ती के जन्म के साथ ही उसके महाप्रासाद में उसकी नियोगिनी चौदह ऋद्धियों और सिद्धियों के देनेवाले चौदह रत्न प्रकट होते हैं। इन्हीं रत्नों में से चक्रवर्ती की सारी आधिभौतिक और दैवी विभूतियां प्रकट होती हैं। वह पूर्व निदान से ही षट्-खंड पृथ्वी के विजेता होने का नियोग लेकर जन्म लेता है। पृथ्वी के नाना खंडों में जहां पीड़क असुरों और शोषक राजाओं के अत्याचारों से लोक-जन पीड़ित होते हैं, उन सब का निर्दलन कर, धरती पर परम सुख, शान्ति, कल्याण और समता का धर्म-शासन स्थापित करने के लिये ही चक्रवर्ती अवतरित होता है। जब चक्री दिग्विजय के लिये जाता है, तो उसका चक्र-रत्न आगे-आगे चलता हुआ उसका पंथ-संधान करता है। यह चक्र एकबारगी ही धर्म और उसकी स्थापक कल्याणी शक्ति का प्रतीक होता है। जब ससागरा पृथ्वी के छः खंडों को जीतकर चक्री अपनी विजय के शिखर पर गर्वोन्नत खड़ा होता है, तभी वृषभाचल पर्वत पर अपनी विजय का मुद्रालेख अंकित करने जाता है। पर वहां जाकर देखता है कि विजय के उस शिलास्तम्भ पर उससे पहले ऐसे असंख्य चक्री अपनी विजय की हस्तलिपि आंक गये हैं और उस शिला पर नाम लिखने की जगह नहीं है। उसी क्षण चक्री का विजयाभिमान चूर्ण हो जाता है। वह अकिंचन भाव से किसी पिछले चक्री का नाम मिटा, अपने हस्ताक्षर कर देता है और समभाव लेकर अपने राज-नगर को लौट जाता है। तब अपनी सारी शक्ति और विभूति प्रजा के कल्याण के लिये उत्सर्ग कर देता है और

---

१. श्वेताम्बरों के अनुसार वह देवदूष्य-वस्त्र ग्रहण करता है। —संपादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यों अप्रमत्त भाव से वह धर्म-शासन का संचालन करता है। इस कथा में बड़े ही लाक्षणिक ढंग से भौतिक सत्ता के अंतिम बिन्दु को, परम कल्याण के छोर में ग्रथित कर दिया गया है। आदि तीर्थंकर वृषभदेव के पुत्र भरत ऐसे ही चक्रवर्ती थे, जिनके नाम से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

इस तरह नारायण, प्रतिनारायण, बलिभद्र, कामदेव आदि परमता की कई कोटियां होती हैं और उनके जुदा-जुदा विवरण हैं।

जैन मान्यता के अनुसार श्रीकृष्ण नारायण थे। वे नियोग से ही तीन खंड पृथ्वी के अधीश्वर अर्धचक्री थे। पूर्णचक्री से ठीक आधे यानी सात रत्न अर्ध-चक्री के कोषागार में जन्म लेते हैं। नारायण प्रधानतया कर्म-पुरुष होता है। वह लोक में लौकिक शौर्य, प्रताप और ऐश्वर्य का अकेला प्रभु होता है। उसकी लीला में कौतुक, कौतूहल, शौर्य, सम्मोहन और प्रणय का प्राधान्य होता है। लीला-पुरुषोत्तम कृष्ण के व्यक्तित्व में इन वृत्तियोंका प्रकाश पूर्णतया सांगोपांग हुआ है। त्रिखंड विजय के उपरान्त उस कर्म-पुरुष के विभव-स्वप्न को मूर्त करने के लिये समुद्र में देवों ने द्वारिका रची थी।

कृष्ण के चचेरे भाई तीर्थंकर नेमिनाथ को कैवल्य प्राप्त होने पर उन्होंने अपने समवशरण में यह भविष्यवाणी की थी कि यादव-पुत्र द्वैपायन के हाथों ही द्वारिका का दहन होगा और अपने ही भाई जरत्-कुमार के हाथों कृष्ण की मृत्यु होगी। छप्पन करोड़ यादवों की भृकुटियां टेढ़ी हो गयी थीं उस समय। कुमार द्वैपायन उसी क्षण दीक्षा लेकर वहां से चल दिये और जरत्कुमार भी इस पातक से बचने के लिये दूर देशांतरों में चले गये। पर उस अकांड को टालने के सारे निमित्त व्यर्थ हुए और तीर्थंकर की वाणी सत्य हुई। यादवों के अपने ही क्रीडा-कौतुक ने उनका आत्मनाश किया। ऐसी थी उस लीला-योगी की लीला। द्वारिका-दहन और यदुकुल के नाश के बाद कृष्ण उत्तर मथुरा की ओर जाते हुए एक जंगल में सोये विश्राम ले रहे थे, भाई बलराम उनके लिये जल लेने गये थे। तभी जंगल में निर्वासन लेकर भटकता जरत्कुमार उधर आ निकला। हरि के पग-तल की मणिको हिंस्र पशु की आंख जान उसने तीर चलाया। वह नारायण के पग-तल की प्राण-मणि को बींध गया। त्रिखंड पृथ्वी का अविजित प्रभु अंतिम क्षण में भाई को क्षमा कर ज्ञानी बन गया और किसी आगामी भव के लिये तीर्थंकर प्रकृति बांध कर तत्काल देह-त्याग कर गया।

कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न कामकुमार थे। कामकुमार जन्म से ही कामदेव का रूप लेकर अवतरित होता है और चरम शरीरी, अघात्य, तथा तद्भव मोक्षगामी होता है। वह स्वभाव से ही बहुत लीला-प्रिय, कौतुकी और साहसी होता है। वह रोमांटिक नायक की पूर्णतम कल्पना को हमारे समक्ष मूर्तिमान करता है। हनुमान भी कामकुमार ही थे। प्रद्युम्न को शिशु-वय में ही पूर्वभव के वैरी ने उसे एक प्रचण्ड शिला के नीचे दबा कर मार देना चाहा था, पर चरम शरीरी कामदेव अघात्य था। उसका घात न हो सका, प्रहार के तले भी वह क्रीड़ा ही करता रहा। शिशु हनुमान अपनी मां अंजना के हाथ से उछल कर विमान में से नीचे कन्दरा में जा गिरे थे। पर्वत की शिला टूक-टूक हो गयी पर हनुमान का बाल बांका न हो सका। बालक मुस्कराता हुआ खेलता पाया गया।

प्रद्युम्न ने अपने पूर्व नियोग के चौदह वर्ष-व्यापी स्वजन-विछोह में कई देश-देशान्तरों में भ्रमण कर अपनी शक्ति, प्रतिभा, शौर्य और सौन्दर्य से अनेक सिद्धियों और विद्याओं का लाभ किया था। अपनी युवा भौहों के मोहक दर्प और अपने ललाट के मधुर तेज से उस आवारा और अनजान राजपुत्र ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनगिनती कुल-कन्याओं और लोक की श्रेष्ठ सुन्दरियों के हृदय जीते थे। यही हाल कृष्ण के पिता वसुदेव का भी था। उनके एक-एक नयन-विक्षेप पर सारे जनपद का रमणीत्व पागल और मूर्च्छित हो जाता था। ऐसी निराली थी इन हरि-वंशियों की वंशजात मोहिनी।

इन शलाका पुरुषों के दिग्विजय, देशाटन, समुद्र-यात्रा, साहसिक वाणिज्य व्यवसाय और अन्ततः ब्रह्म-साधना की बड़ी ही सार्थक और लाक्षणिक कथाओं से जैन पुराण ओत-प्रोत हैं। वस्तु और घटना मात्र को देखनेवाली स्थूल ऐतिहासिक दृष्टि को इन कथाओं में शायद ही कुछ मिल सके। इनके मर्म को समझने के लिये पंडित जवाहरलाल जैसा मानव इतिहास का पारगामी कवि द्रष्टा चाहिये। पंडित जी ने अपनी 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में कहा है कि: 'पुराण, दंतकथा और कल्प-कथा को वास्तविक घटना के रूप में न देखकर यदि हम उन्हें गहरे सत्यों के वाहक रूपकों के रूप में देखें तो इनमें अनादिकालीन मानव सृष्टि का अनन्त ऐश्वर्य-कोष हमें प्राप्त हो सकेगा।"

जैन वाङ्मय में ऐसे रस, शक्ति, तप और प्रकाश के संश्लिष्ट रूपकों की अपार सम्पत्ति पड़ी है। जिज्ञासुओं और सर्जकों को आमंत्रण है कि वे उन चिंतामणियों की आभा से अपनी दृष्टि को पारस बनायें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org